RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18, अंक-2, मार्च अप्रैल मई 2025

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18 अंक - 2 मार्च-अप्रैल-मई-2025

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टिट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

✰ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

✰ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

✰ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

✰ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

✰ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

✰ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

✰ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

✰ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

राजनीति शास्त्र को स्वामी दयानन्द की देन

कमलेश कुमार अटल
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने राजनीति पर कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखा, लेकिन उनके विचार अनेक ग्रंथों—विशेषकर सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका, वेदभाष्य, उनके भाषणों और पत्रों—में व्यापक रूप से बिखरे हुए मिलते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि राजनीति संबंधी उनके विचार मौलिक नहीं हैं, वे तो वेदों, मनुस्मृति और अन्य वैदिक ग्रंथों में वर्णित आदर्शों पर आधारित हैं। किंतु वास्तविकता यह है कि दयानन्द की वैदिक व्याख्या इतनी गहन और स्वतंत्र थी कि उनके अनेक राजनीतिक विचार न केवल नवीन प्रतीत होते हैं बल्कि प्राचीन भारतीय मनीषियों के ग्रंथों और आधुनिक पश्चिमी राजनैतिक चिंतकों के विचारों से भी कहीं आगे दिखाई देते हैं। वे वेदों को मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र—नैतिकता, सामाजिक व्यवस्था, अर्थनीति और राज्य-व्यवस्था—का मूल मानते थे, इसलिए राजनीति उनके चिंतन का स्वाभाविक अंग बन जाती है।

यद्यपि स्वामी दयानन्द मूलतः धार्मिक और सामाजिक सुधारक माने जाते हैं, परंतु राजनीति के प्रति वे कभी उदासीन नहीं रहे। वे जिस आदर्श समाज की कल्पना करते थे—जिसमें शिक्षा, समानता, महिला-सशक्तिकरण, श्रमसम्मान और धर्म-आधारित नैतिकता हो—उसके निर्माण के लिए एक सक्षम और जन-उन्मुख राज्य की आवश्यकता अनिवार्य थी। उनके विचारों में राजनीति का महत्व इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि वे सामाजिक परिवर्तन को राज्यशक्ति से अलग करके नहीं देखते थे। इसके अतिरिक्त उस काल की वास्तविक परिस्थितियाँ भी उन्हें राजनीति-चिंतक बनने के लिए बाध्य करती थीं। ब्रिटिश शासन के चलते भारत आर्थिक दृष्टि से रसातल में पहुँच रहा था। भारी कर, उद्योगों का नष्ट होना, ग्राम-व्यवस्था का टूटना, भू-राजस्व की कठोरता और अंग्रेजों की आर्थिक लूट ने भारतीय समाज को निर्धनता और निर्बलता के गर्त में धकेल दिया था। सामाजिक दृष्टि से भी देश पिछड़ता जा रहा था। जाति-व्यवस्था जड़ और कठोर बन चुकी थी, स्त्रियों की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी, विधवाओं की पीड़ा हृदय विदारक थी, बाल विवाह और छुआछूत जैसी कुरीतियाँ समाज को खोखला कर रही थीं। इन सब कारणों से दयानन्द समझते थे कि भारत को केवल धार्मिक या सामाजिक सुधार से नहीं, बल्कि राजनीतिक स्वतंत्रता से भी उबरना पड़ेगा।

स्वामी दयानन्द का राजनीतिक चिंतन मुख्यतः 'अच्छे शासन' और 'आदर्श राज्य' की अवधारणाओं के इर्द-गिर्द घूमता है। उनके अनुसार राज्य का उद्देश्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि प्रजा के सुख, सुरक्षा, शिक्षा और नैतिक उन्नति की व्यवस्था करना है। उनके विचारों में राजा या शासक सदैव जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। वह प्रजाहित को अपने व्यक्तिगत हित से ऊपर रखे और न्याय-व्यवस्था को पूर्ण निष्पक्षता से चलाए। दयानन्द का यह विचार कि शासन केवल सत्ता का केंद्र नहीं बल्कि एक नैतिक दायित्व है—

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

भारत की राजनीतिक सोच में अत्यंत मौलिक योगदान है। वे चाहते थे कि प्रशासन में, सैनिक व्यवस्था में, शिक्षा में और न्यायालयों में ऐसे अधिकारी हों जो योग्य हों, नैतिक हों और जनता के हित को सर्वोपरि रखें। उनका राज्य-दर्शन किसी विशेष वर्ग या जाति के हित पर आधारित नहीं, बल्कि सार्वजनीन कल्याण पर आधारित था।

इन विचारों के साथ-साथ स्वामी दयानन्द का सबसे क्रांतिकारी योगदान उनका स्वराज्य-संकल्प है। जिस समय अधिकांश विद्वान यह मानते थे कि ब्रिटिश शासन भारत के लिए ईश्वर की देन है, और जब तक भारतीय 'परिपक्व' नहीं हो जाते तब तक विदेशी शासन बने रहना चाहिए—उसी समय दयानन्द पूर्ण स्वतंत्रता के पक्षधर थे। वे स्पष्ट कहते थे कि भारत की सभी विपदाओं का मूल कारण विदेशी शासन है, और जब तक यह शासन समाप्त नहीं होता तब तक भारत न तो आर्थिक रूप से उन्नत होगा, न सामाजिक रूप से सुधरेगा, न सांस्कृतिक रूप से जागृत होगा। उनके कथन में आत्मसम्मान और राष्ट्रीय चेतना की अद्‌भुत स्पष्टता दिखाई देती है। उन्होंने कभी राजनीतिक आंदोलन का नेतृत्व नहीं किया, न ही किसी राजनैतिक संगठन के सदस्य बने, फिर भी उनके विचारों ने आगे चलकर आर्य समाज, स्वदेशी आंदोलन, राष्ट्रीय आंदोलन और अनेक क्रांतिकारी युवाओं को प्रेरणा दी।

स्वामी दयानन्द सामाजिक कुरीतियों को केवल धार्मिक या सामाजिक दोष नहीं मानते थे; वे इन्हें राष्ट्रीय पतन का कारण मानते थे। उनका विचार था कि जिस समाज में स्त्री अपमानित है, जाति-व्यवस्था जड़ और अनम्य है, शिक्षा का अभाव है और बाल-विवाह जैसी कुरीतियाँ फैली हैं—वह समाज राजनीतिक रूप से भी दुर्बल हो जाता है। इस प्रकार उनके लिए सामाजिक सुधार और राजनीतिक स्वतंत्रता एक-दूसरे के पूरक थे। उनके लिए राजनीति का लक्ष्य सत्ता-प्राप्ति नहीं, बल्कि समाज का समग्र उत्थान था।

दयानन्द के राजनीतिक विचारों में धर्म का अर्थ संप्रदाय नहीं बल्कि नैतिक कर्तव्य था। उनका आग्रह था कि राज्य का संचालन सत्य, न्याय और नैतिकता के आधार पर हो। वे शिक्षा को राष्ट्रनिर्माण की आधारशिला मानते थे और चाहते थे कि राज्य ऐसी शिक्षा दे जो नागरिकों में कर्तव्य, साहस, सत्यवादिता और राष्ट्रप्रेम पैदा करे।

राजनीतिक दृष्टि से स्वामी दयानन्द का यह व्यापक योगदान है कि उन्होंने भारत को वैदिक आदर्शों पर आधारित, किन्तु आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाला राज्य-दर्शन दिया। उनकी दृष्टि ने भारतीय राष्ट्रीय चेतना को नई दिशा दी और स्वाधीनता-संघर्ष को वैचारिक आधार प्रदान किया। इस प्रकार बिना राजनीति पर कोई विशुद्ध पुस्तक लिखे भी, स्वामी दयानन्द राजनीति-शास्त्र के ऐसे महान द्रष्टा स्थापित होते हैं जिनके विचार भारतीय राजनीतिक इतिहास की धारा को गहराई से प्रभावित करते हैं।

भारतीय उदारपंथी विचारधारा

भारतीय उदारपंथियों ने उन्नीसवीं सदी में सामाजिक सुधार, शिक्षा, तर्कशीलता और क्रमिक प्रगति को राष्ट्रीय उन्नति का आधार माना। इन विचारकों में राजा राममोहन राय, दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे और स्वामी दयानंद जैसे व्यक्तित्व प्रमुख थे, जिन्होंने भारत की समस्याओं को विभिन्न दृष्टियों से समझा और उसके समाधान के लिए अपने-अपने मार्ग सुझाए।

राजा राममोहन राय :- राजा राममोहन राय भारतीय उदारवाद के सबसे प्रभावशाली प्रतिनिधि

थे। वे गहन देशभक्त, आधुनिक विचारशील दार्शनिक और सामाजिक सुधारों के अग्रदूत थे। भारत में व्याप्त कुरीतियों—सती प्रथा, जातिगत बंधन, अंधविश्वास—से वे अत्यंत व्यथित थे, परंतु उनका विश्वास था कि ब्रिटिश शासन भारत के लिए एक अवसर है, जिसके माध्यम से आधुनिक ज्ञान, तर्क और शिक्षा का प्रसार संभव होगा। वे पाश्चात्य शिक्षा के दृढ़ समर्थक थे। 1830 में लार्ड एमहर्स्ट को लिखे पत्र में उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा में संस्कृत-प्रधानता का विरोध किया और स्पष्ट कहा कि यदि भारत को आगे बढ़ना है, तो उसे आधुनिक विज्ञान, गणित और तर्क की आवश्यकता है। राममोहन राय को ब्रिटिश शासन की नीयत पर भरोसा था और वे तर्क एवं याचिकाओं के माध्यम से सुधार लाने में विश्वास रखते थे। वे भारतीयों और सरकार के बीच सहयोग को राष्ट्रकल्याण का मार्ग मानते थे।

दादाभाई नौरोजी :- दादाभाई नौरोजी भी ब्रिटिश शासन को प्रारम्भिक रूप में वरदान मानते थे। उनका विश्वास था कि ब्रिटिश शासन द्वारा लाया गया कानून और संविधान भारत को आधुनिक राष्ट्र बनाने में सहायक होगा। वे चाहते थे कि अंग्रेज तब तक शासन करते रहें जब तक जनता में राजनीतिक चेतना और न्याय पाने की क्षमता विकसित न हो जाए।

यद्यपि उन्होंने 'ड्रेन ऑफ वेल्थ' सिद्धान्त द्वारा बताया कि ब्रिटिश शासन भारत की आर्थिक क्षति कर रहा है, फिर भी वे याचिकाओं, तर्कों और संवाद के माध्यम से सुधार की आशा रखते थे। उनका उदारवाद ब्रिटिश न्याय और संवैधानिक सुधारों पर आधारित था।

महादेव गोविन्द रानाडे :- रानाडे नरमपंथी और मध्यमार्गी उदारवादी थे। उनका मानना था कि भारत का इतिहास दैवी विधान के समान उतार-चढ़ाव भरा रहा है और ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत आवश्यक अनुशासन और क्षमताएँ अर्जित कर रहा है। वे तत्काल स्वराज्य की मांग के पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार, जब तक समाज आंतरिक रूप से सुधार नहीं करेगा, तब तक राजनीतिक स्वतंत्रता टिक नहीं सकती।

रानाडे सामाजिक एवं धार्मिक सुधार को राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का आधार मानते थे। जाति-पांति, अंधविश्वास, स्त्री-दशा, सामाजिक रूढ़ियों जैसी बुराइयों के रहते वे राजनीतिक स्वतंत्रता को अव्यावहारिक समझते थे। उनके लिए सामाजिक शुद्धि ही राष्ट्र की शक्ति का प्रथम चरण था।

स्वामी दयानंद सरस्वती :- स्वामी दयानंद भी इस बात से सहमत थे कि सामाजिक सुधार के बिना भारत उन्नति नहीं कर सकता। वे अंग्रेजी समाज में कुछ अच्छी विशेषताएँ स्वीकार करते थे—जैसे जातिगत कठोरता का अभाव, विधवा-विवाह की स्वीकृति, सामाजिक समानता—परंतु वे अपने समकालीन उदारवादियों की तरह ब्रिटिश शासन को दैवी विधान नहीं मानते थे।

दयानंद के अनुसार, भारत की सामाजिक समस्याएँ तभी हल हो सकती हैं जब भारत राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो। उन्होंने पूर्ण स्वराज्य के विचार का समर्थन किया और स्पष्ट कहा कि विदेशी शासन भारत की समस्याओं का स्थायी समाधान नहीं दे सकता। वे भारतीय आदर्शों के अनुरूप स्वशासन को राष्ट्रीय उत्थान का वास्तविक मार्ग मानते थे।

दयानन्द का राष्ट्रवाद

स्वामी दयानन्द राजनीतिक नेता नहीं थे, परन्तु उन्होंने अपने विचारों, सामाजिक सुधारों और वैदिक धर्म के पुनर्जागरण के माध्यम से भारतीयों में गहरी राष्ट्रीय चेतना जगायी। उनका राष्ट्रवाद आध्यात्मिक,

सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक सुधारों पर आधारित था।

(1) वेदों की श्रेष्ठता और राष्ट्रीय आत्मगौरव :- दयानन्द ने वेदों को मानवता की सबसे प्राचीन, ईश्वरीय और वैज्ञानिक ज्ञान-ग्रंथ बताया। इससे हिन्दुओं में छिपी हुई हीन भावना दूर हुई और उन्हें अपनी संस्कृति पर गर्व करने का अवसर मिला। विभिन्न सम्प्रदायों को एक साझा वेद-आधारित पहचान मिली, जिससे राष्ट्रीय एकता मजबूत हुई।

(2) जन्म-आधारित जाति व्यवस्था का विरोध :- उनके समय में हिन्दू समाज असंख्य जातियों में बँटा हुआ था। दयानन्द ने स्पष्ट कहा कि जाति जन्म से नहीं, गुण, कर्म और स्वभाव से बनती है। उन्होंने इस जन्मगत व्यवस्था को सामाजिक एकता, आर्थिक प्रगति और राष्ट्रीय शक्ति का सबसे बड़ा बाधक बताया। उनके विचारों ने आधुनिक भारत में सामाजिक लोकतंत्र और समानता की नींव रखी।

(3) स्वदेशी शिक्षा का समर्थन और सांस्कृतिक चेतना :- वे अंग्रेजी शिक्षा को उपयोगी मानते थे, परन्तु उसका अंधानुकरण राष्ट्रवाद के लिए घातक समझते थे। वे वैदिक शिक्षा, संस्कृत और हिन्दी को प्रमुखता देते थे। उनका आग्रह था कि शिक्षा भारतीय संस्कृति से जुड़े, तभी राष्ट्रभावना उत्पन्न होगी।

(4) भारत को आर्यावर्त और आर्यों की मूल भूमि बताना :- उन्होंने पश्चिमी विद्वानों की 'आर्य बाहर से आए हैं' वाली मान्यता को अस्वीकार किया। भारत को उन्होंने आर्यावर्त कहकर उसके सांस्कृतिक-जातीय एकत्व को सिद्ध किया। इससे भारतीय समाज में ऐतिहासिक गौरव और एकरूपता की भावना मजबूत हुई।

(5) भारत का गौरवशाली अतीत और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ :- स्वामी दयानन्द ने बताया कि भारत प्राचीन काल में विज्ञान, तकनीक, दर्शन और धर्म—सभी क्षेत्रों में अग्रणी था। उनकी इस व्याख्या ने भारतीयों को आत्मविश्वास दिया कि वे किसी विदेशी संस्कृति से कम नहीं हैं।

(6) आर्यों का विश्वव्यापी प्रभाव और स्वराज्य का समर्थन :- उनके अनुसार प्राचीन आर्य विश्व के चक्रवर्ती शासक रहे। इसी आधार पर उन्होंने यह घोषित किया कि भारत विदेशी शासन का मोहताज नहीं रह सकता। वे प्रारम्भिक काल के उन नेताओं में थे जिन्होंने पूर्ण स्वराज्य की आवश्यकता पर बल दिया।

(7) विदेश यात्रा, व्यापार और निर्भीकता का समर्थन :- दयानन्द ने आधुनिक सोच अपनाते हुए विदेश यात्राओं को प्रोत्साहित किया। उनका मानना था कि इससे भारतीयों में आत्मविश्वास बढ़ेगा, व्यापार उन्नत होगा और संकीर्णता दूर होगी।

(8) स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग :- वे सादगी और स्वदेशी के समर्थक थे। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के पीछे उनका उद्देश्य आर्थिक स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता था, जो आगे चलकर राष्ट्रवादी आन्दोलन का मजबूत आधार बना।

(9) सामाजिक कुरीतियों का विरोध और राष्ट्रीय एकता :- उन्होंने छुआछूत, बालविवाह, स्त्री-असमानता और बहुपत्नी-प्रथा को अवैदिक बताते हुए इनके उन्मूलन का आह्वान किया। इससे समाज में सुधार की चेतना फैली और राष्ट्रीय शक्ति बढ़ी।

(10) हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में समर्थन :- वे हिन्दी को राष्ट्रीय एकता का सबसे मजबूत माध्यम मानते थे। उनके अनुसार एक राष्ट्र की एक भाषा होना आवश्यक है ताकि सांस्कृतिक और भावनात्मक एकता स्थापित हो सके।

(11) स्त्री-पुरुष समानता का समर्थन :- दयानन्द ने स्त्रियों को शिक्षा, अधिकार और समान दर्जा देने की वकालत की। वे मानते थे कि किसी राष्ट्र की शक्ति उसकी स्त्रियों की उन्नति पर निर्भर करती है।

(12) साम्प्रदायिक सौहार्द और शुद्धि का वास्तविक अर्थ :- वे मुसलमानों और ईसाइयों को विदेशी नहीं मानते थे। शुद्धि-आन्दोलन उनके अनुसार वैदिक धर्म की ओर प्रेरित करने का आध्यात्मिक प्रयास था, न कि साम्प्रदायिकता। वे सभी धर्मों के लोगों को समान रूप से भारतीय मानते थे।

(13) भारतीय रियासतों को वैदिक शासन-आदर्श बताना :- उन्होंने अनेक राजाओं को वैदिक शासन के आदर्श समझाकर उन्हें सुशासन के लिए प्रेरित किया, जिससे लोग विदेशी शासन की तुलना स्वयं कर सकें।

स्वामी दयानन्द और स्वतंत्र भारत के संविधान

स्वामी दयानन्द सरस्वती का मूल लक्ष्य धार्मिक और सामाजिक सुधार था, क्योंकि वे यह भलीभाँति समझते थे कि जब तक समाज संगठित, शिक्षित और कुरीतियों से मुक्त नहीं होगा, तब तक कोई भी राजनीतिक व्यवस्था सुरक्षित और प्रगतिशील रूप में स्थापित नहीं हो सकती। इसी कारण उन्होंने अपने जीवन का बड़ा भाग आदर्श सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में समर्पित किया।

स्वामी दयानन्द के विचार इतने व्यापक और दूरदर्शी थे कि स्वतंत्र भारत के संविधान में उनके अनेक सिद्धांत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं। छुआछूत का उन्मूलन, महिलाओं को समान अधिकार, बालविवाह निषेध, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, तथा हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकृति—ये सब दयानन्द की सोच से मेल खाते हैं।

यद्यपि भारतीय संविधान इन सिद्धांतों को आधुनिक रूप में प्रस्तुत करता है, फिर भी कुछ क्षेत्रों में दयानन्द उससे भी अधिक प्रगतिशील थे। उदाहरण स्वरूप सम्पत्ति-अधिकार के बारे में उनका दृष्टिकोण अत्यंत क्रांतिकारी था। उनके अनुसार सम्पत्ति का मालिक वही होना चाहिए जो उसे लोककल्याण हेतु उचित रूप से उपयोग करने में सक्षम हो। वे सम्पत्ति को 'न्यास' मानते थे—अर्थात व्यक्ति संपत्ति का स्वामी नहीं, बल्कि समाज के हित में उसका संरक्षक है। इस सिद्धांत के अनुसार अयोग्य पुत्र या उत्तराधिकारी को सम्पत्ति मिलना अनिवार्य नहीं, जो आधुनिक समाजवाद से भी अधिक कठोर एवं न्याय-प्रधान विचार है।

स्वामी दयानन्द जिस राज्य की कल्पना करते थे, उसमें वैदिक धर्म के नैतिक मूल्य सर्वोपरि थे। उनका उद्देश्य वेदों के सार्वभौमिक संदेश का प्रसार करके ऐसा समाज बनाना था जो आध्यात्मिक रूप से उन्नत, नैतिक रूप से दृढ़, और राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण हो। वे चाहते थे कि शिक्षा का स्वरूप ऐसा हो जो मनुष्य को बलवान, चरित्रवान, सत्यनिष्ठ और कर्तव्यनिष्ठ बनाए।

उनके अनुसार राजनीतिक व्यवस्था तभी सफल होगी जब नागरिक नैतिक, ईश्वरविश्वासी, अनुशासित और चरित्रवान हों। उन्होंने ऐसे व्यक्तियों के लिए कोई स्थान नहीं माना जो नैतिक मूल्यों को नहीं मानते या

समाजहित की उपेक्षा करते हैं। इस प्रकार, दयानन्द का आदर्श राज्य केवल राजनीतिक ढांचे पर आधारित न होकर धर्म, नैतिकता, शिक्षा और समाज-कल्याण के समन्वय पर टिका हुआ था।

स्वामी दयानन्द की शिक्षा योजना

स्वामी दयानन्द के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व का नैतिक विकास है। वे मानते थे कि धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा का प्रारम्भ घर से होना चाहिए। विशेषतः माता को संतानों को वैदिक धर्म, नैतिकता, साहस, शिष्टाचार और सद्गुणों की प्रारम्भिक शिक्षा देनी चाहिए।

विद्यालयों में छात्रों को ऐसे शिक्षकों के अधीन रखा जाना चाहिए जो योग्य, चरित्रवान और नैतिक रूप से दृढ़ हों। स्कूल नगरों के दूषित वातावरण से दूर हों ताकि बच्चों को प्रलोभनों और बुराइयों से बचाया जा सके। दयानन्द सह-शिक्षा के पक्ष में नहीं थे; उनका मत था कि लड़के और लड़कियाँ अलग रहकर शिक्षा प्राप्त करें।

वे सभी जातियों और वर्गों के छात्रों के प्रति समान व्यवहार के समर्थक थे। पवित्र धर्मग्रन्थों के अध्ययन को वे आवश्यक मानते थे तथा ब्रह्मचर्य के पालन पर बल देते थे। उनके अनुसार ऐसे लालन-पालन से विकसित व्यक्ति कभी लोभी, स्वार्थी या अन्यायी नहीं होंगे। उनका उद्देश्य ऐसी पीढ़ी तैयार करना था जिसमें वर्गभेद, शोषण और अत्यधिक भौतिकवाद न पनपे।

स्वामी दयानन्द की यह शिक्षा-दृष्टि पूर्णतः आध्यात्मिक नहीं थी; वे विज्ञान, तकनीक और सामाजिक विज्ञानों की महत्ता भी स्वीकार करते थे। परन्तु उन्हें ब्रिटिश शिक्षा-पद्धति की यह कमी खटकती थी कि उसमें भारतीय संस्कृति और विरासत के लिए स्थान नहीं था। वे चाहते थे कि शिक्षित युवा शारीरिक रूप से दृढ़, चरित्रवान, अनुशासित, तपस्वी और आध्यात्मिक झुकाव वाले हों।

इन्हीं आदर्शों को मूर्त रूप देने के लिए उनके शिष्यों ने डी.ए.वी. संस्थाओं की स्थापना की। इन संस्थानों का उद्देश्य हिन्दी-संस्कृत का प्रसार, नैतिक शिक्षा, आध्यात्मिक जीवन और सरल जीवन-पद्धति का प्रचार था। साथ ही अंग्रेज़ी और आधुनिक विज्ञान को भी शिक्षा में सम्मानजनक स्थान दिया गया। इन संस्थानों ने सरकारी अनुदान न लेने का निश्चय किया, ताकि शिक्षण की स्वतंत्रता और मिशनरी भावना सुरक्षित रहे।

इसी प्रकार उनके अन्य शिष्यों ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली आरम्भ की, जहाँ स्वावलम्बन, संस्कृत-हिन्दी, भारतीय संस्कृति और स्वदेशी भावना पर अत्यधिक बल दिया गया। यहाँ अंग्रेज़ी और आधुनिक विज्ञान को पूर्णतः नहीं त्यागा गया, पर उद्देश्य ऐसा नागरिक तैयार करना था जो पाश्चात्य जीवन-शैली से दूर रहकर भारतीय मूल्यों—आध्यात्मिकता, नैतिकता और सादगी—को अपनाए।

दोनों ही शिक्षण प्रणालियाँ—डी.ए.वी. और गुरुकुल—दयानन्द के उन्हीं आदर्शों से प्रेरित थीं, जिनका लक्ष्य था ऐसे श्रेष्ठ स्त्री-पुरुष बनाना जिनके विचार, संस्कृति और चरित्र पूर्णतः भारतीय एवं वैदिक हों।

स्वामी दयानन्द : सरकारी तंत्र और राज्य के कर्त्तव्य

स्वामी दयानन्द मानते थे कि किसी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति केवल शिक्षा पर निर्भर नहीं होती,

बल्कि उसके शासक वर्ग की योग्यता और नैतिकता पर भी आधारित होती है। वेद उनके राजनीतिक चिंतन का मुख्य आधार थे, इसलिए वे ऐसी शासन-व्यवस्था चाहते थे जो वैदिक सिद्धांतों पर आधारित हो—जहाँ न तो निरंकुशता हो और न ही जन्म-आधारित सत्ता।

स्वामी दयानन्द का शासन-दर्शन राजतंत्र पर आधारित नहीं था। वे ऐसे शासक की कल्पना ही नहीं कर सकते थे जिसे जनता या सभा द्वारा चुना न गया हो। उनका विश्वास था कि निरंकुश सत्ता जनता के लिए विनाशकारी होती है। इसलिए वे शासन में तीन स्वतंत्र सभाओं की स्थापना के पक्षधर थे— (1) शिक्षा से सम्बंधित सभा, (2) प्रशासन से सम्बंधित सभा, (3) धर्म से सम्बंधित सभा।

इन सभाओं का दायित्व ज्ञान का प्रसार, जन-कल्याण और देशहित की रक्षा होना चाहिए। किसी एक व्यक्ति के हाथ में पूर्ण सत्ता न हो—राजा (या अध्यक्ष), सभा और जनता—तीनों एक-दूसरे के उत्तरदायी हों। शासक और सभासदों के चयन में वे उच्च नैतिकता, ईमानदारी, वेदज्ञान, न्यायप्रियता और विद्वता को अनिवार्य मानते थे। अशिक्षित व अविवेकी व्यक्ति को सत्ता के किसी पद के योग्य वे नहीं मानते थे।

स्वामी दयानन्द का दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धांत था—धर्म की सर्वोपरी सत्ता। धर्म की व्याख्या का अधिकार ऐसे व्यक्तियों को हो जो वेद के ज्ञाता हों। राज्य के कानून धर्म के विरुद्ध नहीं होने चाहिए, और शासक को धर्म-विरोधी आदेश देने का अधिकार नहीं होना चाहिए। इस प्रकार वे 'धर्मराज्य' की कल्पना करते थे, लेकिन यह धर्म पंथ-निरपेक्ष न होकर वैदिक मूल्यों पर आधारित था।

लोकतंत्र के प्रति उनका दृष्टिकोण व्यावहारिक था। केवल 'संख्या-आधारित लोकतंत्र' को वे सही लोकतंत्र नहीं मानते थे। उनके अनुसार सत्ता ऐसे व्यक्तियों को मिलनी चाहिए जिनमें नैतिकता, बुद्धिमत्ता, विद्वता और नेतृत्व की क्षमता हो—चाहे वे किसी भी जाति या परिवार में जन्मे हों। इस दृष्टि से वे जन्म-आधारित सत्ता के विरोधी और योग्यता-आधारित लोकतंत्र के समर्थक थे।

स्वामी दयानन्द का मत था कि लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है जब समाज में न्यायपूर्ण व्यवस्था हो, लोग शिक्षित, अनुशासित, निडर, उदार और समाजसेवा की भावना से प्रेरित हों। इसलिए उन्होंने सामाजिक सुधार, शिक्षा और चरित्र-निर्माण पर विशेष जोर दिया।

उन्होंने अपने संगठन आर्य समाज में निर्वाचन-आधारित व्यवस्था लागू की। यह उस समय अत्यंत क्रांतिकारी कदम था, जब भारत में चुनाव प्रणाली का लगभग कोई अस्तित्व नहीं था और यूरोप में भी यह सीमित रूप से लागू थी। इस प्रकार वे जाति-आधारित नेतृत्व और वंशानुगत परम्पराओं के विरोधी तथा आधुनिक लोकतांत्रिक भावनाओं के समर्थक थे।

स्वामी दयानन्द और सार्वभौम भ्रातृभाव

स्वामी दयानन्द सरस्वती का दृष्टिकोण केवल भारत तक सीमित नहीं था। वे एक ओर प्रखर राष्ट्रवादी थे, तो दूसरी ओर सच्चे अंतर्राष्ट्रीयवादी भी। उनका विश्वास था कि वेदों में निहित सत्य किसी एक समुदाय, देश या जाति तक सीमित नहीं, बल्कि पूरी मानवता के लिए है। वेद उनके लिए सार्वभौमिक ज्ञान का स्रोत था, जिसका उद्देश्य सभी मनुष्यों की उन्नति और कल्याण है।

इसी वैदिक व्यापकता के कारण वे मानव समाज में सार्वभौम भ्रातृभाव अर्थात् विश्व-बंधुत्व—को स्थापित देखना चाहते थे। उनके अनुसार आर्य समाज का मूल ध्येय केवल भारत का सामाजिक और

आध्यात्मिक उत्थान नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व में वेदज्ञान का प्रसार करके मानवता को एक उन्नत, नैतिक और शांति-पूर्ण दिशा देना है।

उन्होंने ऐसे भविष्य की कल्पना की जिसमें पूरा विश्व वेद की शिक्षाओं को अपनाएगा और संसार एकजुट होकर चलेगा। इस वैश्विक व्यवस्था का नेतृत्व कोई वंशानुगत सम्राट नहीं करेगा, बल्कि ऐसा चक्रवर्ती सम्राट होगा जिसे उसकी योग्यता, विद्वता और नैतिकता के आधार पर विभिन्न देशों की सभाओं द्वारा चुना जाएगा। इस प्रकार उनका विचार एक ऐसी विश्व-राजनीति का समर्थन करता है जिसमें व्यापक एकता, समानता, सहयोग और नैतिक शासन हो।

स्वामी दयानन्द सरस्वती को साम्प्रदायिक बताना समीचीन नहीं है। वे किसी धर्म के विरोधी नहीं थे, बल्कि वेद-विरुद्ध सिद्धान्तों के आलोचक थे। इसलिए उन्होंने इस्लाम, ईसाई धर्म, बौद्ध, जैन या हिन्दू सभी परंपराओं के उन पक्षों की आलोचना की जो उनके अनुसार तर्क, सत्य और वेदसम्मत विचार से दूर थे। उन्होंने मूर्तिपूजा, जातिपाति और कट्टरपंथी हिन्दू सिद्धान्तों की भी उतनी ही कठोर आलोचना की जितनी अन्य मतों की।

वे बहुसंख्यक हिन्दू समाज में सुधार इसलिए चाहते थे क्योंकि तत्कालीन समाज अंधविश्वास और सामाजिक कुरीतियों से सबसे अधिक पीड़ित था। उन्होंने कभी भी हिन्दुओं के लिए विशेषाधिकार की मांग नहीं की, और मुसलमानों तथा अन्य समुदायों को भी भारतीय राष्ट्र का अविभाज्य अंग माना।

उनका राष्ट्रवाद धर्मनिरपेक्षता के आधुनिक अर्थ जैसा नहीं था, क्योंकि उनके लिए राष्ट्र और धर्म (धार्मिक मूल्य) एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। परन्तु उनका राष्ट्रवाद न तो घृणा पर आधारित था, न हिंसा पर—यह आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित था जिसमें सम्पूर्ण मानवता समाहित थी। वेद के सार्वभौमिक संदेश को स्वीकार करने वाला कोई भी व्यक्ति, चाहे विदेशी ही क्यों न हो, उनके लिए पराया नहीं था।

स्वामी दयानन्द के अनुसार राज्य के कर्त्तव्य

स्वामी दयानन्द सरस्वती की दृष्टि में राज्य के कर्त्तव्य अत्यंत व्यापक, न्यायशील और लोककल्याणकारी होने चाहिए। वे अहस्तक्षेप नीति के पक्ष में नहीं थे, बल्कि राज्य से सक्रिय भूमिका की अपेक्षा करते थे।

स्वामी दयानन्द के अनुसार राज्य का पहला दायित्व नागरिकों को भीतरी अशांति, असामाजिक तत्वों और बाहरी आक्रमण से सुरक्षा देना है। राज्य को न्याय व्यवस्था कठोरता और निष्पक्षता से लागू करनी चाहिए तथा अपराधों पर निवारक दंड देना आवश्यक है। शासन निरंकुश न होकर कानून के अधीन होना चाहिए।

राज्य को समानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था बनानी है। उसका उद्देश्य जनता का बौद्धिक, नैतिक और भौतिक कल्याण होना चाहिए। वे निजी संपत्ति के अधिकार को स्वीकार करते थे, पर उसे पूर्ण स्वामित्व नहीं मानते थे—संपत्ति का उपयोग समाज के सामूहिक हित में होना चाहिए।

राज्य को शराब तथा अन्य बुरी आदतों पर रोक लगानी चाहिए और एक-पत्नीव्रत को बढ़ावा देना चाहिए। स्वामी दयानन्द चाहते थे कि सरकार कुशल और बुद्धिमान अधिकारियों की सहायता से चले तथा विद्वानों को सम्मान व पुरस्कार देकर ज्ञान के प्रसार को प्रोत्साहित करे। कर-व्यवस्था सरल और कष्ट

रहित होनी चाहिए।

राज्य को अंतर्राष्ट्रीय कानूनों को स्वीकार करना चाहिए और अन्य देशों के साथ यथार्थवादी राजनयिक संबंध स्थापित करने चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण यह कि न्याय प्रणाली में साक्ष्य को आधार बनाया जाए ताकि प्रत्येक व्यक्ति को उचित न्याय मिल सके।

स्वामी दयानन्द का प्रभाव

स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रभाव अत्यंत व्यापक और बहुआयामी था। उनका व्यक्तित्व इतना ओजस्वी था कि उन्होंने न केवल अपने समय को बल्कि आने वाली पीढ़ियों को भी गहराई से प्रभावित किया। उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने, जन्म आधारित जाति-पांति तथा छुआछूत के उन्मूलन, स्वदेशी के प्रोत्साहन और सामाजिक कुरीतियों के विरोध जैसे विचारों को दृढ़ता से आगे बढ़ाया—और ये सभी आज भारतीय समाज में व्यापक रूप से स्वीकार किए गए हैं। इससे उनके प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

19वीं शताब्दी के भारतीय पुनर्जागरण में उनका स्थान केंद्रीय था। इस पुनर्जागरण का मूल प्रेरणा स्रोत प्राचीन भारतीय मनीषियों की आध्यात्मिकता, मानवीय मूल्यों तथा सांस्कृतिक आत्मगौरव का पुनर्जागरण था, जिसे स्वामी दयानन्द ने नई शक्ति प्रदान की। एनी बेसेन्ट, भगवान दास, रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे अनेक विचारक और नेता दयानन्द के वैचारिक प्रभाव से प्रेरित हुए। टैगोर ने तो उन्हें ''आधुनिक भारत का महान निर्माता'' तक कहा। इन सभी नेताओं में समानता यह थी कि वे दयानन्द की तरह आध्यात्मिकता, तर्क, राष्ट्रवाद और नैतिक राजनीति पर बल देते थे।

लोकमान्य तिलक, अरविन्द घोष और बी.सी. पाल जैसे क्रांतिकारी राष्ट्रवादी भी स्वामी दयानन्द के विचारों से अनुप्राणित थे। स्वराज्य, स्वदेशी, वेद-आधारित सांस्कृतिक चेतना और नैतिक राजनीति—इन सभी क्षेत्रों में उनका दृष्टिकोण दयानन्द से मिलता था। भारतीय राष्ट्रवाद के दो प्रमुख स्रोतों—पश्चिम का राजनीतिक दर्शन और भारतीय मन की हीनभावना से मुक्ति—में से दूसरा स्रोत दयानन्द के विचारों से गहराई से जुड़ा था।

आर्य समाजी नेताओं—लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, भाई परमानन्द—पर उनका प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय था। लाला लाजपतराय ने जातिपांति, छुआछूत, बालविवाह और विदेशी शासन के विरोध जैसे क्षेत्रों में दयानन्द के विचारों को आगे बढ़ाया। डी.ए.वी. कॉलेज की स्थापना, स्वदेशी का समर्थन, हिन्दू-मुस्लिम एकता में दायित्व आधारित दृष्टि, नैतिक राजनीति और सामाजिक सुधार ये सब उनके जीवन में स्पष्ट दिखाई देते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द ने शुद्धि आंदोलन, छुआछूत-निवारण, समानता पर आधारित समाज की स्थापना और गुरुकुल शिक्षा जैसी योजनाओं द्वारा दयानन्द के सुधार-कार्य को क्रियान्वित रूप दिया। भाई परमानन्द भी उसी परंपरा में थे—वे जातिपांति उन्मूलन, सांस्कृतिक गौरव, समानता और राष्ट्र के प्रति निष्ठा के समर्थक थे।

सावरकर और हरदयाल जैसे राष्ट्रवादी विचारकों ने भी दयानन्द के विचारों से प्रेरणा ली। हिन्दू समाज के सांस्कृतिक पुनर्जागरण, संगठन और शुद्धि की आवश्यकता पर उनका दृष्टिकोण दयानन्द की सोच

से मेल खाता था।

अंततः, स्वामी दयानन्द का प्रभाव केवल किसी धार्मिक सुधार तक सीमित नहीं था; उन्होंने भारतीयों को उनके गौरवशाली अतीत की याद दिलाई, वर्तमान की दुरवस्थाओं को दिखाया और भविष्य की दिशा का रास्ता सुझाया। 20वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में जो भी महान सामाजिक और राजनीतिक नेता उभरे, वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनके विचारों से प्रेरित हुए। इसी से उनकी ऐतिहासिक भूमिका और प्रभाव का वास्तविक आकलन किया जा सकता है।

गांधी और दयानन्द

महात्मा गांधी और स्वामी दयानन्द भारतीय चिंतन के दो ऐसे महान व्यक्तित्व हैं, जिनके लक्ष्य, आदर्श और सामाजिक दृष्टि कई स्तरों पर एक-दूसरे से मेल खाते हैं। दोनों ही जीवनभर स्वराज्य, स्वदेशी, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने तथा जाति-पाँति और छुआछूत जैसी कुरीतियों के उन्मूलन के पक्षधर रहे। समाज में चरित्र, सादगी और नैतिकता को सर्वोच्च मूल्य मानने की उनकी धारणा समान थी।

स्वामी दयानन्द ने जिस नये भारत का आधार तैयार किया, उसी भवन को महात्मा गांधी ने आगे बढ़ाकर खड़ा किया। दोनों ही ईश्वर-विश्वासी थे और वे हिन्दू शास्त्रों में निहित आध्यात्मिक और नैतिक सिद्धांतों में अटूट आस्था रखते थे। उनका मत था कि समाज को बदलने के लिए पहले व्यक्ति के चरित्र और कर्त्तव्यनिष्ठा को मजबूत करना आवश्यक है। पश्चिमी भोगवादी और यांत्रिक सभ्यता की आलोचना भी दोनों के विचारों में समान रूप से दिखाई देती है। वे अनुशासन, सादगी, संयम और पवित्र जीवन को मानवता की उन्नति का आधार मानते थे।

फिर भी दोनों की भूमिकाएँ भारतीय इतिहास में अलग-अलग थीं। स्वामी दयानन्द मूलतः धर्म एवं समाज के सुधारक थे, जिन्होंने यह समझ लिया था कि बिना सामाजिक परिवर्तन के राजनीतिक परिवर्तन स्थायी नहीं हो सकते। उन्होंने छुआछूत मिटाने और सामाजिक समानता स्थापित करने का जो आंदोलन प्रारंभ किया, गांधीजी ने उसे आगे बढ़ाया। गांधीजी ने स्वयं स्वीकार किया कि स्वामी दयानन्द की 'छुआछूत-विरोधी घोषणा' उनके लिए प्रेरणा-स्रोत थी।

अहिंसा, सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध गांधीजी की राजनीतिक और आध्यात्मिक साधना के मुख्य साधन थे, जबकि दयानन्द इन सबको वेद-आधारित व्यवस्था के आदर्शों के साथ परखते थे और इन्हें पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं करते थे। गांधीजी आधुनिक राजनीतिक चिंतन से प्रभावित थे, जबकि दयानन्द का विश्लेषण अधिकतर वैदिक परंपरा पर आधारित था।

इसके बावजूद दोनों का अंतिम लक्ष्य समान था – देश को स्वतंत्र करना, आत्मनिर्भर बनाना, उसकी आध्यात्मिक शक्ति को पुनर्जीवित करना और उसे नैतिक रूप से सशक्त राष्ट्र के रूप में स्थापित करना। दोनों ने राजनीति को आध्यात्मिक आधार प्रदान किया, यद्यपि उनके मार्ग भिन्न थे। इस प्रकार दयानन्द और गांधी भारतीय नवजागरण की दो ऐसी धाराएँ हैं, जो भिन्न दिशाओं से बहते हुए भी एक ही राष्ट्रीय लक्ष्य पर जाकर मिलती हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्वामी दयानन्द ने समाज, शिक्षा और राज्य के क्षेत्रों में व्यापक सुधार की आवश्यकता बताई। वे छुआछूत, जाति-पाति, बालविवाह और मूर्ति पूजा के विरोधी थे और

समानता, नैतिकता और आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित समाज चाहते थे। शिक्षा को केवल ज्ञान के लिए नहीं बल्कि चरित्र निर्माण और नैतिक उन्नति के लिए आवश्यक माना। उन्होंने सरकार और राज्य के कर्तृतव्यों पर बल दिया, जिसमें न्याय, समानता, योग्य अधिकारियों द्वारा प्रशासन और संपत्ति का समाजहित में उपयोग शामिल था। उनका राष्ट्रवाद धर्म और संस्कृति पर आधारित था, लेकिन वे अन्य धर्मों के अनुयायियों के प्रति समान दृष्टि रखते थे। उनके विचारों और शिक्षाओं ने गांधी, तिलक, अरविन्द घोष, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द आदि पर गहरा प्रभाव डाला और आधुनिक भारत में सामाजिक सुधार, नैतिक पुनरुत्थान और राष्ट्रीय चेतना के विकास में योगदान दिया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *महर्षि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, 1950*
2. *महर्षि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास 11, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 1973*
3. *दयानन्द कमोमरेशन वाल्यूम, सम्पादक हरविलास शारदा, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, 1933*
4. *द ट्रिब्यून, मार्च 2, 1926. 'आर्य समाज एंड इंडियन नेशनलिज्म' (1875-1920), धनप्रति पांडे. चांद एंड कम्पनी, नई दिल्ली*
5. *डॉ. लाल साहब सिंह, स्वामी दयानन्द का राजनीतिक दर्शन, आर्य समाज, कलकत्ता, 1990*
6. *डॉ. वी.पी. वर्मा, आधुनिक भारतीय रजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनाराण अग्रवाल, आगरा, 2022*
7. *डॉ. ए. अवस्थी एवं डॉ. आर.के. अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन,* रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2019
8. डॉ. कपिल देव द्विवेदी, वेदों में राजनीतिशास्त्र, विश्वभारती अनुसंधान परिषद, ज्ञानपुर, भदोही (उ.प्र.), 2022